P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-VII March-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

वर्तमान में सम्राट अशोक के शिलालेखों की उपयोगिता

सुष्मिता
असिसटेन्ट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
देश बन्धु कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

सारांश

अशोक कई दृष्टियों से अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति और संसार के इतिहास में महान् तथा असाधारण पुरूषों में से एक था। वह एक महान् विजेता, निर्माता, राजनीति–विशारद्, शासक, धर्म और समाज सुधारक एवं दार्शनिक था। उसने सैनिक विजय का त्याग किसी पराजय के बाद नहीं बल्कि कलिंग के शक्तिशाली लोगों पर विजय के पश्चात् किया और एक बड़े ही शक्तिशाली साम्राज्य के अटूट साधनों से सम्पन्न होते हुए भी उसने पड़ोसी राज्यों के साथ सहनशीलता की नीति का अनुसरण किया। उसने अपनी प्रजा के साथ उदारता और निष्पक्षता का व्यवहार किया, जो आने वाली पीढ़ियों के सामने एक आदर्श बना रहा। विश्व इतिहास में अशोक का अपना एक स्थान है। अशोक ने निरंतर मानव के नैतिक उत्थान के लिए प्रयास किया। जिन सिद्धान्तों के पालन से नैतिक उत्थान संभव था, अशोक के लेखों में उन्हें 'धम्म' कहा गया है। चाहे वो स्तंभ लेख हो या शिलालेख 'धम्म' की व्याख्या बड़े ही स्पष्ट शब्दों में की गई है।

मुख्य शब्द : सम्राट अशोक, शिलालेखों की उपयोगिता, नैतिक उन्नति

परिचय

कल्याणकारी कार्य, पाप रहित होना, मृदुता, दूसरों के प्रति व्यवहार में मधुरता, दया, दान तथा शुचिता सभी धम्म है।

अशोक ने अपने लेखों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक उन्नति कैसे की जाए यह बताने का प्रयास किया है। चाहे वो बच्चा हो, बुजूर्ग व्यक्ति हो, माता–पिता हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, ब्राह्मण हो या श्रमण सभी को अपने–अपने कर्तव्य का किस–प्रकार पालन करना चाहिए उनका कैसे व्यवहार होना चाहिए इन सभी की चर्चा अभिलेखों के माध्यम से की गई है।

शिलाओं तथा स्तंभों पर उत्कीर्ण लेखों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अशोक का धम्म व्यावहारिक फलमूलक (अर्थात् फल को दृष्टि में रखने वाला) और अत्यधिक मानवीय था। इस धम के प्रचार से अशोक अपने साम्राज्य के लोगों में तथा बाहर अच्छे जीवन के आदर्श को चरितार्थ करना चाहता था।

गिरनार, कालसी, शहबाजगढ़ी, मानसेहरा, धोली, जौगढ़, सोपारा, एर्रगुडि शिलालेख, तो दूसरी ओर दिल्ली–टोपरा, दिल्ली–मेरठ, इलाहाबाद–कोसम या प्रयाग स्तम्भ लौड़िया–अराराज, लौड़िया–नन्दनगढ़ रामपुरवा स्तंभ सभी लेख अशोक ने अपने पुरे साम्राज्य में स्थापित किए थे। शिलालेखों व स्तंभ लेखों के माध्यम से अशोक ने जो संदेश दिया है, वो आज भी उतने ही उपयुक्त हैं।

अभिलेख

1. देवानं पिये पियद्सि राजा सब पासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च पूजाय पूजयति ने [(1)]
2. न तु तथा दानं व पूजा व देवान पियो मंञते यथा किति सारवढ़ी अस सबपासंडानं [(2)] सारवही तु बहुविधा [(3)]
3. तस तु इदं मूलं य बचगुती किंति आत्पपासंडपूजा व पर पासंड गरहा व नो भवे अप्रकरणम्हि लहुक वसा
4. तिम्हि तिम्हि प्रकरणे [(4)] पूजेतया ते एवपर पासंडा तेन तन प्रकरणेन। एवं करूं आत्मपासंडि च बढयति पासंडस च उपकरोति [(5)]
5. तद्ंञ्था करोतो आत्पपाषंड च छणति परमासंडस च पि अपकरोति [(6)] यो हि कोचि आत्पपासंडं पूजयति परपासंडं व गरहति
6. सवं आत्प पासंडभतिया किंति आत्पपासंडं दीपयेम इति सो च पुन तथ करातो आत्पासंडं उपहनाति [(7)] समवायो एवं साध

7. किंति अञमंञस धमं स्रुणारू च सुसुंसे च [8] एवंहि देवानंपियस इछा किंति सवपासंडा बहुस्रुता च असुकलाणागमा च असु [9]
8. ये च तत्र तत् प्रसंना तेहि वतव्यं [10] देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा किंति सारवडी उस सर्वपासडानं [11] बहका च एताय
9. अथा व्यापता धममहामाता च इथीझखमहामाता च वचभूमीका च अञ च निकाया [12] अयं च एतस फल य आत्पपासंडवही च होति धंमस च दीपना [13]

संस्कृतच्छाया

1. देवानां प्रियदर्शी राजा सर्वान् पाषण्डान् च प्रव्रजितान् च गृहस्थान् च पूजयति दानेन च विविधया च प्जया पूजयति।
2. न तु तथा दानं वा पूजां वा देवानां प्रियः मन्यते यथा किमिति? सारवृद्विः स्यात् सर्वपाषण्डानाम्। सारवृद्विः तु बहुविधाः।
3. तस्य तु इदं मूलं यत् वचोगुप्तिः किमिति? आत्मपोषण्ड पूजा वा परपाखण्डगर्हा वा न भवेत् अप्रकरणे लघुका वा स्यात्
4. तस्मिन् तस्मिन् प्रकरणे पुजयितव्या तु एवं परपाष्डाः तस्मिन् प्रकरणे। एवं कुर्वन् आत्मपाषण्डं च वद्धयति परपाषण्डं च उपकरोति।
5. तद्न्यथ कुर्वन् आत्मपाषण्डं च क्षिणोति परपाषण्डं चापि अपकरोति। यः हि कश्चित् आत्मपाषण्डं पूजयति परपाषण्डं च गर्हयति
6. सर्वम् आत्मपाषण्डभत्त्या किमिति? 'आत्मपाषण्ड च दीपयेम' इति सः च पुनः तथा कुर्वन् आत्मपाषण्डं वाढतरम् उपहन्ति। तत् समवाय एवं साधु
7. किमिति? अन्योन्यस्य धम श्रृणुयुः च शुश्रूषेरन्च। एवं हि देवानां प्रियस्य इच्छा। किमिति? सर्वे पाषण्डाः बहुश्रुताः च स्युः कल्याणागमा च स्युः।
8. ये च तत्र प्रसन्नाः तैः वक्तव्यम्। देवानां प्रियः न तथा दानं वा पूजां वा मन्यते यथा किमिति? सारवृद्विः स्यात् सर्वपाषण्डानाम्। बहुक च ए तस्मै
9. अर्थाय व्यापृताः धममहामात्राः च स्त्रयध्यक्षमहामात्रा च व्रजभूमिका च अन्ये च निकायाः इदं च एतस्य फलं यत् आत्मपाषण्डवृद्विः च भवति धमस्य च दीपना।

गिरनार के शिलालेख में सभी संप्रदायों के आदर की बात कही गई है। सभी संप्रदायों में सार तत्व की वृद्वि हो। लख में लिखा गया है कि सार वृद्धि कई प्रकार की होती है। उसका मूल है वचन पर संयम अर्थात् लोग केवल अपने ही संप्रदाय का आदर और बिना अवसर सभी धर्मो का आदर करें और किसी भी धम की निन्दा न करें या विशेष अवसर पर निन्दा भी हो तो संयम के साथ या थोड़ी होनी चाहिए। किसी भी अवसर पर हर दशा में दूसरे संप्रदायों का आदर करना चाहिए। दूसरे संप्रदाय भी पूजनीय है। ऐसा करता हुआ मनुष्य अपने सम्प्रदाय की वृद्वि करता है और दूसरे सम्प्रदाय का उपकार करता है। इसके विपरीत यदि दूसरे धम का अपकार करता है, तो वास्तव में अपने ही सम्प्रदाय को क्षीण करता है।

इन पक्तियों से स्पष्ट है कि एक सच्चे अन्वेषक की भाँति अशोक ने यह पता लगा लिया था कि विभिन्न मतों के लोगों की संकीर्ण वृद्धि ही आपसी कलह एवं विवाद का कारण बनती है। अतः यह सबको उदार दृष्टिकोण अपनाने का उपदेश देता है।

इस बात के प्रमाण है कि अशोक की दानशीलता से बौद्वेत्तर जनों एवं सम्प्रदायों को भी प्रभुत लाभ हुए। उसने बराबर (गया जिला) पहाड़ी पर आजीवक सम्प्रदाय के सन्यासियों के निवास के लिए कुछ गुफाएँ निर्मित करवायी थी। कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर में उसने विजयेश्वर नामक एक शैव मंदिर का जीर्णोद्वार करवाया था तथा उसके भीतर दो समाधियाँ निर्मित करवाई थी। इन उद्वरणों से अशोक की धार्मिक सहिष्णुता स्पष्टताः सिद्ध हो जाती है।

अशोक ने अपने दूसरे एवं साँतवें स्तंभ लेखों के माध्यम से धम्म निर्माण के गुणों का स्पष्ट वर्णन किया है। 'अपासिनवेबहुकयानेदयादानेसचेसोचयेमाददेसाधवे च। अर्थात धम्म–

1. अल्प पाप (अपासिनवे) है
2. अत्याधिक कल्याण (बहुकयाने) है।
3. दया है
4. दान है
5. सत्यवादिता है।
6. पवित्राता (सोचये) है।
7. मृदुता (मादवे) है।
8. साधुत (साधवे) है।

इन गुणों को व्यवहार में लाने के लिए निम्मलिखित बातें आवश्यक बतायी गई है–

1. अनारम्भो प्राणानाम् (प्राणियों की हत्या न करना)
2. अविहिंसा भूतानाम् (प्राणियों को क्षति न पहुँचाना)
3. मातरि–पितरि सुसूसा (माता–पिता की सेवा करना)
4. थेर सुसूसा (वृद्वों की सेवा करना)
5. गुरूणाम् अपचिति (गुरूजनों का सम्मान करना)
6. मित संस्तुत नाटिकानां बहमण–समणानां दानं संपटिपति (मित्रों, परिचितों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों के साथ अच्छा व्यवहार करना)
7. दास–भतकम्हि सम्य प्रतिपति (दासों एवं नौकरों क साथ अच्छा बर्ताव करना)
8. अप–व्ययता (अल्प व्यय)
9. अपभाण्डता (अल्प संचय)

अभिलेख

1. देवानंपिये पियद्सि लाज हेवं आह (1) कयानंमेव दे... ..... ।
2. कयाने कटी ती (2) नो मिना पापं देखति इयं में पापे कटे ति इयं व
3. आसिन वे नामा ति (3) दुपटिवेखे चु खो एसा (4) हेवं चु खो एस देखिये (5)
4. इमानि आसिनवगामीनि नाम अथ चंडिये निठ्लिये कोधे
5. माने इस्या कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं (6)..... वार्ड
6. देखिये इयं में हिद्तिकाये इयं में पालतिकाये

संस्कृतच्छाया

1. देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह। (जनः) कल्याणमेव प(श्यति) –इदं
2. कल्याणं कृतम् इति। नो मनाक् पापं पश्यति–इदं मया पापं कृतम् इति इदं वा
3. आसिनवं नाम इति। दुष्प्रत्यवेक्ष्यं तु खलु एतत्। एवंत। एवं तु खलु (जनः) एतत् पश्येत–
4. 'इमानि आसिनवगामीनि नाम, यथा, चाण्डयं, नैष्ठुर्य, क्रोधः,
5. मनः, ईर्ष्या कारणेन वा अहं मा परिभ्रंशयिष्यामि'। (एतत्) वाढं
6. पश्येत्–'इदं में ऐहिकाय इदं में पारत्रिकाय'।

धम्म का पूर्ण परिपालन तभी सम्भव हो सकता है, जब मनुष्य उसके गुणों के साथ ही साथ इन विकारों से भी अपने को मुक्त रखे। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य सदा आत्म–निरीक्षण करता रहे। ताकि उसे अधः पतन के मार्ग में अग्रसर करने वाली बुराइयों का ज्ञान हो सके। तभी धम्म की भावना का विकास हो सकता है। धम्म के मार्ग का अनुसरण करने वाला व्यक्ति स्वर्ग की प्राप्ति करता है और उसे इहलोग तथा परलोक दोनों में पुण्य की प्राप्ति होती है।

अभिलेख

1. अतिकातं अंतरं विहारयातां ञयास (1) एत मगव्या अजानि च एतारिसनि
2. अभीरमकानि अहुंसु (2) सो देवानंप्रियो पियदसि राजा दसवर्साभिसितो संतो अयाय संबोधि (3)
3. तेनेसा धंमयाता (4) एतयं होति बाम्हणसमणानं दसणे च दाने च थैरानं दसणे च
4. हिरंण पटिविधनो च जानपद्स च जनस दस्पनं धमानुसस्टी च धमपारिपुछा च
5. तदोपेया। एषा भुय रतिः भवति देवानंपियस प्रियदसिनो राञो भागे अंञ (6)

संस्कृतच्छाया

1. अतिक्रान्तम् अन्तरं राजानः विहारयात्राम् इयासुः। अत्र मृगया अन्यानि च एतादृशानि
2. अभिरामाणि अभूवन्। तत् देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा दशवर्षाभिषिक्तः सन् इयाय सम्बोधिम्।
3. तेन एषा धमयात्रा। तत्रा इदं भवति–ब्राह्मण–श्रमणानां दर्शनं च दानं च स्थविराणां दर्शनं च।
4. हिरण्यप्रतिविधनं च जानपदस्य च जनस्य दर्शनं धर्मानुशिष्टिः च धम परिपृच्छा च।
5. तदुपेया। एषा भूया रतिः भवति देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः भागः अभ्यः।

धम्म तथा उसके उपादान अशोक को बहुत प्रिय थे। साधरण मनुष्यों में धम्म को बोधगम्य बनाने के उदेश्य से वह इसकी तुलना भौतिक जीवन के विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले मंगलों का उल्लेख करता है तथा उन्हें अल्पफल वाला बताता है।

उनके अनुसार 'धम्म–मंगल' महाफल वाला है। यह दासों तथा नौकरों के साथ उचित व्यवहार, गुरूजनों के प्रति आदर, प्राणियों के प्रति दया आदि आचरणों में प्रकट होता है।

अभिलेख

1. देविनं प्रियो पियदसि राजा एवं आह (1) नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धमदानं धंमसंस्तवो वा धमसंविभागो (वा) धंमसंबधो व (2)
2. तत इदं भवति दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती मातरि पितरा साधु सुस्रुसा मितसस्तुत ञातिकानं बाम्हणस्रमणानं साधु दानं
3. प्राणानं अनारंभो साधु (3) एत वतत्यं पिता व पुत्रेन व भाता व मितसस्तुतञातिकेन व आव पटिवेसियेहि इदं साधु इदं कतव्य। (4)
4. सो तथा करूं इलोकचस आरधो होति परत च अनंतं पुइयं भवति तेन धंमदानेन (4)

संस्कृतच्छाया

1. देवानां प्रियः प्रियदर्शो राजा एवम् आह। नास्ति एतादशं दानं याहशं धमसंस्तवः वा धमसम्बन्धः वा।
2. तत् इदं भवति दासभृतकषु सम्प्रतिपत्तिः मातरि पितरि साधु शुश्रूषा मित्रा–संस्तुत शातिकेभ्यः ब्राह्मण–श्रमणेभ्यः साधु दानं
3. प्राणानाम् अनालम्भः साध एतत् वक्तव्यं पित्रा व पुत्रेण वा मित्रा–संस्तुत–ज्ञातिकैः वा यावत् प्रतिवेश्यैः 'इदं साधु इदं कर्तव्यम्'।
4. सः तथा कुर्वन् (तस्य तथा कुर्वतः) इहलोकः आलब्धः भवति परत्र च अनन्तं पुण्यं भवति तेन धमदानेन।

उपरोक्त शिलालेख में धम्मदान की तुलना सामान्य दान से की गई है तथा धम्मदान को श्रेष्ठतर बताया गया है। यहाँ धम्मदान का अर्थ–धम्म का उपदेश देना, धम्म में भाग लेना तथा धम्म से अपने को सम्बन्धित कर लेना। इस प्रकार तेरहवें शिला लेख में है–

अभिलेख

1. .....ञो कलिंगा विज------(1)-------- वठे सत सहस्रमात्र तत्रा बहुतावतकं (2) तता पछा अधुना लधसु कलिंगेसु तीवो धंमवायो
2. .....सयो देवानंप्रियस वज.....वधो व मरणं व अपवाहो व जनस त बाडं वेदनमत च गुरूमत च देवानंपि.....स
3. .....बाम्हणा गुरू सुसुंसा मिसंस्तत सहायञाति केसु दासभ.....
4. .....अभिरतानं व विनिखमण (7) येसं वा प..... हायञातिका व्यसनं प्रापुणति तत सो पि तेस उपघातो हाति (8) पटीभागो चेसा सब.....
5. .....रित इमे निकाय अञत्र योनेसु..... म्हि यत्र नास्ति मानुसानं एकतरम्हि पासंडम्हि न नाम प्रसादो (10) यावतको जनो तदा
6. .....स्रभागो व गरूमतो देवानं..... न य सक छमितबे (12) या च पि अटवियो देवानं पियस पिजिते पाति
7. .....चते तेसं देवानंपियस.....सवभूतानां अछतिं च सयमं च समचैरं च मादव च
8. ..... लधे.....न प्रियस इध सवेसु च तेन चत्वारो राजानो तुरमायो च अंतेकिन च मगा च
9. .....इध राजविसयम्हि योनकंबो..... धपारिंदेसु सवत देवानांप्रियस धंमानुसस्टिं अनुवतरे (18) यत पि इति

10. .....नं धमानुसस्टिं च धम अनुविधियरे.....विजयो सवथा पुन विजयों पोतिरसो सा (20) लधा पीती होति धंमवीजयम्हि
11. .....प्रियो (23) एताय अथाय अयं धंमल.....वं विजय मा विजेव्यं मंञा सरसके एव विजये छाति च
12- .....किको च पारलोकिको..... इलोकिका च पारलोकिका च (24)

संस्कृतच्छाया

1. .....(रा) ज्ञः कलिङाः विजि (ता) .....। .....(अप) व्यूढं शतसहस्रमात्रं तत्र हतं बहुतावत्कं मृतम्। ततः पश्रात् अधुना लब्धेषु कलिङेषु तीव्रः धर्मोपायः
2. ....-(अनु)शयः देवानां प्रियस्य विजि(त्य)-.....वधः वा मरणं वा अपवाहः वा जनस्य तत् बाढं वेदनीयमतं च गुरूमतं च देवानां प्रि(यस्य) .....स.....
3. .....ब्राह्मणाः.....गुरूशुश्रषा मित्रा – संस्तुत – ज्ञातिकेषु दासभृ (त के षु)
4. .....अभिरत्तानां च विनिष्कमणम्। येषा वा अपि.....(स) हायज्ञातिकाः व्यसनं प्रामुवन्ति। तत्र सः अपि तेषाम् उपघातः भवति। प्रतिभागः च एषः सर्व.....
5. .....सन्ति इमे निकाया अन्यत्र यवनेषु.....(जनप) दे यत्र नास्ति मनुष्याणाम् एकतरस्मिन् पापण्डे न नाम प्रसादः। यावान् जनः तदा.....
6. .....(सह) स्रभागः वा गुरूमतः देवानं..... न यत् शक्यं क्षन्तुम्। या च अपि अटवी देवानं प्रियस्य भवति....
7. ....च ते तेषां देवानां प्रियस्य..... सर्वभूतानाम् अक्षति च संयम च समाचर्या च मार्दवं च
8. .....लब्धः....(देवा) नं प्रियस्य... इह सर्वेषु च..... यवनराजः परं च तस्मात् चत्वारः राजानः च अन्तेकिनः च मगः च
9. ....इह राज–विषयेषु यवन–कम्बो..... (अं) स्र पुलिन्देषु सर्वत्रा देवानां प्रियस्य धर्मानुशास्तिः.....अनुवर्तते। यत्र अपि दूताः
10. .....नं धर्मानुशस्ति च धमम् अनुविदधति.....विजयः सर्वथा पुनः विजयः प्रीतिरसः सः। लब्ध सा प्रीतिः भवति धमविजये
11. .....प्रियः। एताय अर्थाथ इयं धम लि (पिः).....(न) विजयं मा विजेतव्यं मंसत। स्वके एव विजये क्षान्तिं च.....
12. .....(ऐहलौ) किकः च पारलौकिकः .....ऐहलौकिकी च पारलौकिकी च।

अशोक सैनिक विजय की तुलना धम्म–विजय से करता है। इस प्रसंग में वह कलिंग विजय में होने वाली व्यापक हिंसा एवं संहार की घटनाओं पर भारी पश्चाताप करता है। उसके अनुसार प्रत्येक सैनिक–विजय में घृणा, हिंसा एवं हत्या की घटनाऐं होती है। इसके विपरीत धम्म–विजय प्रेम, दया, मृदुता एवं उदारता आदि से अनुप्राणित होती है।

तेरहवें शिलालेख में धम्म–विजय की चर्चा करते हुए अशोक कहता है कि देवताओं का प्रिय धम्म विजय को सबसे मुख्य विजय समझता है। यह विजय उसे अपने राज्य में तथा सब सीमान्त प्रदेशों में छह सौ योजना तक, जिसमें अन्तियोक नामक यवन राजा तथा अन्य चार राजा तुरमय अन्तिकिन, मण और अलिक सुन्दर है, तथा दक्षिण की ओर चेर, पाण्डय और ताम्र पर्णि तक में प्राप्त हुई है। उसी तरह यहाँ राजा के राज्य में यवनों और कम्बोजों में, नम पँतिक्तयों और नामक में, वंशानुगत भोजों, आन्धक और पुलिन्दों में –सब जगह लोग देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन मानते हैं। जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते वहाँ भी लोग धर्मादेशों और धम विधान को सुनकर धर्माचरण करते हैं और करते रहेंगे। इस प्रकार प्राप्त विजय सर्वत्र प्रेम से सुरभित होती है। वह प्रेम धम विजय से प्राप्त होता है। पर वह तुक्ष वस्तु है। देवताओं का प्रिय पार लौकिक कल्याण को हो बड़ा समझता है। यह धम लेख इसलिए लिखवाया गया ताकि मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र नए देश विजय करने का इच्छा त्याग दें और जो विजय सिर्फ तौर से प्राप्त हो सकती है उसमें भी वे साहिष्णुता तथा मृत्युदण्ड का ध्यान रखे और वे धम्म विजय को ही वास्तविक विजय समझे। यह इह लोक तथा परलोक दोनों के लिए अच्छा हैं। धम–प्रेम सभी राज्यों का प्रेम बने। यह इह लोक तथा परलोक दोनों के लिए मंगलकारी है। निःसंदेह अशोक की धम्मविजय संबंधो उपयुक्त अवधरणा ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रंथों की एतद्विषयक अवधारणाओं से भिन्न है।

अतः स्पष्ट है कि अशोक की धम्म विजय में युद्ध अथवा हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं था। वस्तुतः अशोक भारतीय इतिहास में पहला शासक था, जिसने राजनीतिक जीवन में हिंसा के त्याग का सिद्धान्त सामने रखा। यही सही है कि अशोक के पूर्व कई ऐसे विचारक हुए जिन्होंने हिंसा क त्याग तथा अहिंसा के पालन करने का सिद्धान्त प्रचारित किया। किन्तु यह केवल व्यक्तिगत जीवन के संबंध में था। यहाँ तक कि स्वंय बुद्ध भी राजनीतिक हिंसा के विरूद्ध नहीं थे और उन्होंने मगध नरेश अजातशत्रु को वज्जि संघ को जीतने का उपाय बताया था। न तो बौद्ध शासक अजातशत्र और न ही जैन धम के पोषक नन्द राजाओं तथा कलिंग राज खारवेल ने ही यह स्वीकार किया कि राजनीतिक हिंसा धर्म विरूद्ध है। अतः यह अवधारणा कि राजनीतिक हिंसा धम विरूद्ध है अशोक के मस्तिष्क की ही उपज प्रतीत होती है। अशोक ने व्यक्तिगत आचार शास्त्रा को शासकीय आचार शास्त्र में परिणत कर दिया। इस प्रकार अशोक की धम्म विजय की अवधरणा ब्राह्मण अथवा बौद्ध लेखकों के धम विजय संबन्धो इस अवधरणा के प्रतिकूल थी कि 'इसमें यद्ध तथा हिंसा द्वारा प्राप्त साम्राज्य सम्मिलित है।

अशोक के धम्म के अन्तर्गत जिन सामाजिक एवं नैतिक आचारो का समावेश किया है वे वही हैं जिन्हें सभी सम्प्रदाय समान रूप से श्रेद्वय मानते हैं। धम की इस सरलता और सर्वाड़ीणता ने इसके स्वरूप को महत्व प्रदान किया। स्पष्टतः इसमें किसी भी दार्शनिक अथवा तत्वमीमांसीय प्रश्न की समीक्षा नहीं हुई है। इसमें न तो महात्मा बुद्ध के चार आर्य सत्यों का उल्लेख है, न अष्टागिक मार्ग हैं और न आत्मा–परमात्मा सम्बन्धो अवधारणायें ही हैं। अतः विद्वानों ने धम्म को भिन्न–भिन्न रूपों में देखा है। फ्रलीट इसे 'राजधर्म' मानते है जिसका विधान अशोक ने अपने राजकर्मचारियों के पालनार्थ किया था। परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष तर्क संगत नहीं लगता

क्योंकि अशोक के लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि उसका धम्म केवल राजकर्मचारियों तक सीमित नहीं था, अपितु वह सामान्य जनता के लिए भी था। राधाकुमुद मुकर्जी ने इसे 'सभी धर्मो की साझी सम्पति' बताया है। उनके अनुसार अशोक का व्यक्तिगत धर्म ही बौद्ध धर्म था तथा उसने साधरण जनता के लिए जिस धर्म का विधान किया वह वस्तुतः 'सभी धर्मो का सार' था।

रोमिला थापर की धारणा है कि अशोक की धम्म नीति उसके द्वारा स्थापित किए सुविस्तृत साम्राज्य में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से अपनाई गई थी। यह एकता या तो कठोर केन्द्रीय नियंत्रण या भावनात्मक एकता के द्वारा स्थापित की जा सकती थी। अशोक प्रथम मौर्य सम्राट था जिसने भावनात्मक एकता के महत्त्व को समझा तथा इसी को प्राप्त करने के लिए धम्म का प्रचार किया। थापर के अनुसार 'अशोक ने धम्म को सामाजिक उत्तरदायित्त्व की एक वृत्ति के रूप में देखा था। इसका उद्देश्य एक ऐसी मानसिक वृत्ति का निर्माण करना था, जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्त्वों को, एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के प्रति व्यवहार को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाए। इसमें मनुष्य की महिमा को स्वीकृति देने और समाज के कार्यकलापों में मानवीय भावना का संचार करने का आग्रह था।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1- पाण्ड़े, राजबली–अशोक के अभिलेख
2- सरकार, डी0 सी0 – सलेक्टेड इंस्क्रीपस्न